

पेड़- प्रकृति की रक्षा और उसके साथ जीना सिखाती “गवरी”

आदिवासियों का लोक नाट्य, जो चलता है पूरे ४० दिन



अरावली की पहाड़ियों को जब सावन भिगो चुका होता है, भादौ की दूसरी ही तिथि को मांदल और थाली बज उठती है, खासकर उन आदिवासी इलाकों में जो भील बहुल हैं और जो भगवान शिव के उपासक हैं। प्रकृति की गोद में लहलहाती फसलें दानों को दूधाधार बनाने में अपना ध्यान देती है और उस दाने को दमदार बनाने के लिए भील समुदाय वाले शिव-गौरी की आराधना में निकल पड़ते हैं, गांव-गांव ‘गवरी’ की लीला आरंभ हो जाती है। रोजाना दस से लेकर पंद्रह खेल...।

पूरे ४० दिन भील समाज के पुरुष महिला रूप धरे अलग अलग जगह जाकर पूरे दिन गवरी खेलते हैं। गवरी खेलने का मतलब है कि गाँव या मोहल्ले के किसी बड़े चौक में सुबह से शाम और कभी कभी पूरी-पूरी रात “ओपन थियेटर”। यह पूरा नृत्यानुष्ठान कई मिथक लिए हैं। इसी से मालूम होता है कि खेती और पेड़-पौधों के फलित होने के कलेंडर की पहली जानकारी महिलाओं को ही मिली थी। यायावरी जीवन में आदमी को शिक्षित करने का श्रेय औरत को ही है। इसलिए मिस्र में भी यह मान्यता चली आई है कि औरतों ने दुनिया को खेती करना सिखाया।

गवरी की मूल कथा है - धरती पर कोई पेड़ नहीं। छाया कहां मिले? नौ लाख देवियां परेशान। एक उड़ते हुए बड़े से भँवरे को देखा। पूछा कि जो पेड़ नहीं तो तू कहां से आया। तू तो फूलों का रसिक है। देवियों को उसने बहुत परेशान होकर बताया कि पाताल में राजा वासुकी का बगीचा है, वहां खूब पेड़ हैं। देवियां पाताल पहुंची। एक एक देवी ने एक एक पेड़ उखाड़ा। वासुकी ने हजार फन तानकर रास्ता रोक लिया। देवी अंबा ने गुरज उठाया, लगी फन काटने। नागिन ने सुहाग की रक्षा मांगी। देवियों ने पेड़ चाहे। वासुकी ने कहा, धरती के लोग बहुत प्रपंची है। पेड़ों पर कुल्हाड़ा चलाएंगे। देवी कहा, राजा जैसल की बाड़ी में रोपेंगे। राजा जैसल ही रक्षा करेगा। सर चला जाए तो भी वह पेड़ नहीं कटने देगा।

एक एक देवी पेड़ लेकर जमीं पर आई। देवियों का नाम भी इसी कारण हुआ- पीपल लाने वाली पीपलाज माता, नीम लाने वाली नीमज माता, आम वाली अंबा माता, खेर वाली खेमज माता, उमर वाली उमरा माता, बरगद वाली बडली माता। शाकंभरी, हिंगलाज, कष्मांडा... सोचकर देखिये।

कथानक के अनुसार उदयपुर के पास खमनोर गांव में पहली बार देवियों ने बाड़ी लगाई। सारे पेड़ों के साथ ही बरगद रोपा। राजा ने घी-दूध से सींचा मगर आबू के लुटेरे भानिया जोगी की सवा लाख की फौज चढ़ आई। देवी अंबा परीक्षा लेने पहुंची। रानी मेंदला के समझाने पर भी राजा ने सर दे दिया, इस अहद के साथ कि सवा लाख मानवी मरेंगे तो कहीं कुल्हाड़ा चलेगा पेड़ पर...। भानिया ने कुल्हाड़ा चलाया। पहले वार में दूध की धारा बही, दूसरे में पानी की



धारा फूटी और तीसरे में... प्रलय ही आ गया, लहू की धारा ने सारी धरती को लाल कर दिया। देवी ने कहा- पेड़ बचे तो पृथ्वी बचेगी, पेड़ कटा तो प्राण घटेगा।

कितना सार्थक है गवरी को देखना। गवरी एक व्रत से कम नहीं। इसके नर्तन, मंचन के पीछे भावना वही है- "समय-समय पर वर्षा हो, खेतों की फसलें इतियों से रहित हों और खलिहान हमारे कोठों को भरें, गांव-गांव आरोग्य हो, किसी को कोई आधि-व्याधि नहीं हों, गायें और अन्य पशुधन रोग मुक्त हों, पर्याप्त दूध प्रदान करें....।"

सिर्फ बहिन- बेटियों के गाँव जाकर रमते है गवरी: यह भी कितना दिलचस्प है कि आदिवासी पुरुष केवल अपने मूल गाँव की बहिन- बेटियों के बुलावे पर उनके ससुराल वाले गाँव में जाकर गवरी खेलते हैं। पूरे ४० दिन ये पुरुष प्रकृति की उपासना करते है। हरा भोजन नहीं करते, पैरों में चप्पल या जूते नहीं पहनते- ताकि कोई छोटा सा कीट- पतंगा भी



इनके पैरों में आने से मर ना जाए! प्रत्येक कलाकार फसल नहीं उजाड़ता, न मांदल जैसा बाजा जमीं पर रखा जाता है। मद्यपान से दूर रहते हैं। आदमी ही गवरी करते हैं और औरतें उनके स्वास्थ्य के लिए गौरजा मां के दरबार में इसके लिए रोजाना दुआ करती हैं। चालीस से ज्यादा नाटक खेले जाता है। क्या देवी-देवता की कथा और क्या लोकरंजक आख्यान... नौ ही रस, तांडव और लास्य, पूरा का पूरा काव्य शास्त्र, पुराण शास्त्र, नाट्य शास्त्र इसमें दिखाई देता है। बूडिया, दो राइयां, भोपा, कुटकडिया। पांच कलाकार मांझी होते हैं और बाकी भी वंश परंपरानुसार रमते हैं। श्राद्ध पक्ष तक रमण होता है।

हर गवरिया के पीछे उसकी मां और पत्नी चालीस दिवसीय व्रतानुष्ठान करती हैं। दोपहर से संध्या तक मिट्टी के मांदल और कांसे की थाली की लयकारी पर घुंघरू घमकते हैं और गावणी अरथावणी (गाजा- बाजा) के साथ खेल शुरू और समाप्त होता है। जब भी नया खेल आता है, परदे के पीछे आता है और फिर मंडल में नर्तन बिलोवन के साथ पर्दा हटा दिया जाता है। कुछ पात्र छाता लेकर उसकी आड़ बनाते हुए भी आते हैं जैसे : बंजारा, हठिया, भियावड़, खड़लिया, कालूकीर।

तो अगली बार मानसून में उदयपुर या आस पास के इलाकों में आना हो, तो समय निकाल कर भीलों के इस नृत्य को ज़रूर देखिये और सोचिये कि ये समाज किस कदर प्रकृति की रक्षा करता है और इन संदेशों को किस कदर अपने बच्चों और समाज को सिखाता है।

(गवरी लोकनाट्य पर कई किताबें लिख चुके इतिहासकार श्री कृष्ण जुगनू से हुई बातचीत के आधार पर; लेख- ओम फोटो- प्रमोद सोनी, पंकज सोनी)